National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2026; 1(67): 101-106
© 2026 NJHSR
www.sanskritarticle.com

चंद्रपाल लोधी
शोध छात्र, संस्कृत विभाग,
डॉ॰ हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर,
मध्य प्रदेश

डॉ. शशि कुमार सिंह
संस्कृत विभाग,
डॉ॰ हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर,
मध्य प्रदेश

Correspondence:
चंद्रपाल लोधी
शोध छात्र, संस्कृत विभाग,
डॉ॰ हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर,
मध्य प्रदेश

संस्कृत साहित्य में गांधी-चिंतन की भविष्य-दृष्टि: सत्य, अहिंसा, सर्वोदय, सामाजिक न्याय एवं पर्यावरणीय चेतना का आलोचनात्मक अध्ययन

चंद्रपाल लोधी , डॉ. शशि कुमार सिंह

सारांश

भारतीय बौद्धिक परंपरा में संस्कृत साहित्य केवल धार्मिक एवं दार्शनिक विमर्श का माध्यम नहीं रहा, बल्कि उसने सत्य, धर्म, अहिंसा, लोकसंग्रह, करुणा, आत्मसंयम, त्याग और सर्वभूतहित जैसे मानवीय मूल्यों को भी निरंतर अभिव्यक्ति प्रदान की है। महात्मा गांधी ने भारतीय परंपरा के इन मूल्यों का आधुनिक परिस्थितियों में पुनर्पाठ करते हुए उन्हें सामाजिक एवं राजनीतिक परिवर्तन के सक्रिय साधनों में रूपांतरित किया। सत्य उनके लिए जीवन का परम नैतिक आधार बना, अहिंसा राजनीतिक संघर्ष की शक्ति बनी, सत्याग्रह अन्याय के विरुद्ध नैतिक प्रतिरोध का माध्यम बना तथा सर्वोदय और अंत्योदय ने सामाजिक न्याय की दिशा निर्धारित की। इसी प्रकार स्वदेशी, अपरिग्रह और न्यासिता ने गांधी के आर्थिक एवं पर्यावरणीय चिंतन को विशिष्ट स्वरूप प्रदान किया।

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य संस्कृत साहित्य में उपलब्ध मूल्यपरक अवधारणाओं और गांधी-चिंतन के बीच अंतर्संबंध का आलोचनात्मक परीक्षण करते हुए यह स्पष्ट करना है कि इन विचारों की भविष्य-दृष्टि वर्तमान वैश्विक समस्याओं—हिंसा, आर्थिक विषमता, सामाजिक बहिष्कार, उपभोक्तावाद, पर्यावरणीय संकट तथा नैतिक अवमूल्यन—के संदर्भ में किस प्रकार प्रासंगिक हो सकती है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि संस्कृत साहित्य और गांधी-विचार के बीच संबंध प्रत्यक्ष समानता का नहीं, बल्कि **परंपरा के आधुनिक पुनर्पाठ और नैतिक पुनर्सृजन** का है।

प्रमुख शब्द: गांधी-चिंतन, संस्कृत साहित्य, सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह, सर्वोदय, अंत्योदय, सामाजिक न्याय, पर्यावरणीय चेतना, स्वराज।

1. प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति के विकास में संस्कृत साहित्य की भूमिका अत्यंत व्यापक रही है। वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, भगवद्गीता, पुराण, स्मृतियाँ, दर्शन, महाकाव्य और नीतिग्रंथ भारतीय समाज के धार्मिक एवं दार्शनिक जीवन को प्रभावित करने के साथ-साथ उसके नैतिक और सामाजिक चिंतन को भी दिशा प्रदान करते रहे हैं। इस साहित्य में मनुष्य और समाज के संबंध, व्यक्ति के कर्तव्य, प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण, राजधर्म, लोककल्याण तथा आत्मसंयम जैसे प्रश्नों पर व्यापक विचार मिलता है।

महात्मा गांधी आधुनिक भारत के ऐसे चिंतक हैं जिन्होंने भारतीय परंपरा को आधुनिक राजनीतिक और सामाजिक जीवन के साथ जोड़ने का महत्वपूर्ण कार्य किया। उनके लिए भारतीय परंपरा अतीत की स्थिर विरासत नहीं थी, बल्कि वर्तमान समस्याओं को समझने और उनका समाधान खोजने का जीवंत स्रोत थी। उन्होंने *भगवद्गीता*, उपनिषदों, रामायण तथा भारतीय धार्मिक-दार्शनिक परंपराओं से प्रेरणा ग्रहण करते हुए सत्य, अहिंसा, निष्काम कर्म, आत्मसंयम और लोकसेवा को अपने जीवन-दर्शन का आधार बनाया (Gandhi, 1927; Gowda, 2011)।

संस्कृत साहित्य को केवल प्राचीन धार्मिक अनुष्ठानों, दार्शनिक सूत्रों अथवा राजकीय गौरव के वर्णन तक सीमित करना उसके व्यापक स्वरूप को संकुचित करना होगा। संस्कृत एक ऐसी सृजनशील

साहित्यिक परंपरा रही है, जिसने समय-समय पर बदलती सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों के साथ संवाद स्थापित किया है। बीसवीं शताब्दी में भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान महात्मा गांधी के व्यक्तित्व और उनके विचारों ने आधुनिक संस्कृत साहित्य को भी गहराई से प्रभावित किया। संस्कृत के अनेक आधुनिक कवियों और साहित्यकारों ने गांधी के जीवन, संघर्ष तथा उनके नैतिक आदर्शों को अपनी रचनाओं का विषय बनाकर उन्हें नवीन साहित्यिक अभिव्यक्ति प्रदान की। इसी प्रक्रिया के परिणामस्वरूप संस्कृत में गांधी-केंद्रित काव्य-सृजन की एक विशिष्ट साहित्यिक धारा विकसित हुई।

यहाँ यह सावधानी आवश्यक है कि संस्कृत साहित्य में उपस्थित प्रत्येक मूल्य को सीधे गांधीवाद का पूर्वरूप मानना ऐतिहासिक रूप से उचित नहीं होगा। प्राचीन ग्रंथ अपने विशिष्ट सामाजिक और दार्शनिक संदर्भों में रचे गए थे। गांधी ने उनमें से कुछ मूल्यों का चयन कर उन्हें आधुनिक औपनिवेशिक शासन, सामाजिक विषमता और राजनीतिक संघर्ष की परिस्थितियों में नया अर्थ दिया। इसलिए संस्कृत साहित्य और गांधी-विचार का संबंध **प्रभाव, पुनर्व्याख्या और वैचारिक संवाद** के स्तर पर अधिक उपयुक्त ढंग से समझा जा सकता है।

2. अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

1. संस्कृत साहित्य में निहित सत्य, अहिंसा, लोकसंग्रह और सर्वभूतहित संबंधी विचारों का विवेचन करना।
2. गांधी के सत्याग्रह एवं अहिंसा-दर्शन के साथ इन मूल्यों के अंतर्संबंध का परीक्षण करना।
3. गांधी के सर्वोदय, अंत्योदय और सामाजिक न्याय संबंधी विचारों की मूल्यपरक पृष्ठभूमि का अध्ययन करना।
4. स्वदेशी, अपरिग्रह एवं न्यासिता को आधुनिक आर्थिक और पर्यावरणीय संदर्भ में समझना।
5. गांधी-चिंतन की भविष्यगत प्रासंगिकता का वैश्विक समस्याओं के संदर्भ में आलोचनात्मक परीक्षण करना।
6. यह निर्धारित करना कि संस्कृत साहित्य और गांधी-विचार के मूल्य वर्तमान तथा भविष्य के समाज के लिए किस प्रकार उपयोगी हो सकते हैं।

3. शोध-पद्धति

यह अध्ययन मुख्यतः **वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक, तुलनात्मक एवं व्याख्यात्मक** पद्धति पर आधारित है। प्राथमिक स्रोतों के रूप में *भगवद्गीता*, *ईशावास्योपनिषद्*, *वाल्मीकि रामायण* तथा गांधी के प्रमुख लेखन—*हिन्द स्वराज*, *An Autobiography*, *Constructive Programme* आदि—का उपयोग किया गया है। आधुनिक विद्वानों के शोधग्रंथों एवं शोध-लेखों को द्वितीयक स्रोत के रूप में ग्रहण किया गया है।

अध्ययन में संस्कृत के मूल मूल्यों को आधुनिक गांधीवादी अवधारणाओं के साथ यांत्रिक रूप से समान नहीं माना गया है। बल्कि ऐतिहासिक संदर्भ, अर्थ-परिवर्तन और गांधी द्वारा किए गए पुनर्पाठ को ध्यान में रखते हुए तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है।

4.सत्य और अहिंसा: भविष्य के वैश्विक संकटों के समाधान की गांधीवादी दृष्टि

भारतीय चिंतन-परंपरा में **सत्य और अहिंसा** को मानव जीवन के उच्च नैतिक मूल्यों के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। गांधी ने इन दोनों मूल्यों को केवल व्यक्तिगत आचरण तक सीमित न रखकर सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन का आधार बनाया। उनके चिंतन में सत्य जीवन की मूल साधना है और अहिंसा उस सत्य की व्यावहारिक अभिव्यक्ति। गांधी की प्रसिद्ध उक्ति **"सत्य ही ईश्वर है"** उनके सत्य-केंद्रित जीवन-दर्शन को स्पष्ट करती है। इसी प्रकार अहिंसा उनके लिए निष्क्रियता अथवा दुर्बलता नहीं, बल्कि अन्याय के प्रतिरोध की नैतिक शक्ति थी।

संस्कृत साहित्य में सत्य और अहिंसा की अवधारणाओं की दीर्घ परंपरा दिखाई देती है। *भगवद्गीता* में सत्य और अहिंसा दोनों को दैवी गुणों में सम्मिलित किया गया है—

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्॥*(श्रीमद्भगवद्गीता, 16.2)*

अर्थात् अहिंसा, सत्य, क्रोध का अभाव, त्याग, शांति, प्राणियों के प्रति दया, लोभ का अभाव तथा विनम्रता आदि मनुष्य के उदात्त गुण हैं। गांधी ने भारतीय धार्मिक एवं दार्शनिक परंपरा में उपलब्ध ऐसे नैतिक मूल्यों को आधुनिक सामाजिक-राजनीतिक संदर्भ में पुनर्व्याख्यायित किया। इस दृष्टि से गांधी का चिंतन प्राचीन भारतीय मूल्यपरंपरा और आधुनिक मानवीय समस्याओं के बीच एक रचनात्मक सेतु का कार्य करता है।

(i). सत्य की भविष्य-दृष्टि

गांधी के लिए सत्य केवल कथन की सत्यता नहीं, बल्कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नैतिक प्रामाणिकता का प्रश्न था। उन्होंने सत्य को अपने व्यक्तिगत प्रयोगों, सामाजिक कार्यों और राजनीतिक संघर्षों का आधार बनाया। सत्याग्रह इसी सत्य-निष्ठा का सक्रिय सामाजिक रूप था। *सत्याग्रह* में सत्य के प्रति दृढ़ आग्रह के साथ-साथ आत्मबल और अहिंसक प्रतिरोध का भाव निहित है।

आधुनिक संस्कृत साहित्य में पण्डिता क्षमाराव की *सत्याग्रहगीता* इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है। इस कृति में गांधी के सत्याग्रह और स्वतंत्रता-संघर्ष को संस्कृत के महाकाव्यात्मक एवं गीतात्मक ढाँचे में अभिव्यक्ति मिली। इस प्रकार सत्य को केवल व्यक्तिगत सदाचार न मानकर सामाजिक परिवर्तन की शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया।

भविष्य की दृष्टि से सत्य का महत्व और अधिक बढ़ जाता है। डिजिटल संचार, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, सोशल मीडिया और तीव्र सूचना-प्रवाह के युग में वास्तविक और कृत्रिम सूचना के बीच अंतर करना एक गंभीर चुनौती बन गया है। ऐसी स्थिति में गांधीवादी सत्य-दृष्टि मनुष्य को तथ्यपरकता, नैतिक विवेक और उत्तरदायी संवाद की ओर प्रेरित कर सकती है।

इस संदर्भ में *मुण्डकोपनिषद्* का प्रसिद्ध वाक्य विशेष रूप से स्मरणीय है—

सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः।

(मुण्डकोपनिषद्, 3.1.6)

अर्थात् अंततः सत्य की ही विजय होती है, असत्य की नहीं। आधुनिक संदर्भ में इस वाक्य को सत्यनिष्ठ सामाजिक जीवन और उत्तरदायी ज्ञान-व्यवस्था के नैतिक आदर्श के रूप में देखा जा सकता है।

इस प्रकार भविष्य की तकनीकी सभ्यता में गांधीवादी सत्य केवल नैतिक उपदेश नहीं, बल्कि विश्वसनीय सूचना, जिम्मेदार तकनीकी विकास और मानवीय निर्णय-क्षमता के लिए आवश्यक मूल्य बन सकता है।

(ii). अहिंसा: दुर्बलता नहीं, नैतिक शक्ति

गांधी की अहिंसा का मूल स्वरूप निष्क्रियता नहीं था। वे अहिंसा को अन्याय के सामने आत्मसमर्पण के रूप में नहीं, बल्कि सत्य के आधार पर अन्याय का प्रतिरोध करने वाली शक्ति के रूप में देखते थे। इसी कारण सत्याग्रह में अहिंसा और आत्मबल का समन्वय दिखाई देता है।

संस्कृत साहित्य में अहिंसा को उच्च नैतिक आदर्श के रूप में स्वीकार किया गया है। *भगवद्गीता* के उपर्युक्त श्लोक में अहिंसा और सत्य को दैवी संपदा का अंग बताया गया है। इसी प्रकार भारतीय धर्म-दर्शन की अनेक धाराओं में प्राणीमात्र के प्रति करुणा और हिंसा-त्याग की भावना महत्वपूर्ण रही है।

गांधी ने इस परंपरा को आधुनिक राजनीतिक जीवन में सक्रिय रूप दिया। उनके आंदोलनों में अहिंसा का उद्देश्य विरोधी का विनाश नहीं, बल्कि अन्यायपूर्ण व्यवस्था के विरुद्ध नैतिक चेतना उत्पन्न करना था। आधुनिक गांधी-अध्ययन में भी सत्याग्रह और अहिंसा के इसी संबंध पर विशेष बल दिया गया है (Hazama, 2022; Mantena, 2012)।

(iii). आणविक युग में अहिंसा की प्रासंगिकता

इक्कीसवीं शताब्दी में युद्ध की तकनीक अत्यधिक विनाशकारी हो चुकी है। परमाणु हथियारों और आधुनिक सैन्य तकनीक के कारण किसी बड़े संघर्ष का प्रभाव केवल युद्धरत देशों तक सीमित नहीं रह सकता। ऐसी परिस्थिति में हिंसा के माध्यम से संघर्ष का समाधान मानव सभ्यता के लिए अत्यंत गंभीर जोखिम उत्पन्न करता है।

इसी संदर्भ में गांधीवादी अहिंसा को पुनः पढ़ने की आवश्यकता है। अहिंसा का अर्थ केवल युद्ध का निषेध नहीं, बल्कि संवाद, मध्यस्थता, सह-अस्तित्व, संघर्ष-निवारण और नैतिक प्रतिरोध की संस्कृति का विकास भी है। भविष्य के वैश्विक समाज में यदि हिंसा की संरचनाओं को कम करना है, तो अहिंसक संवाद और नैतिक राजनीतिक प्रतिरोध की आवश्यकता बढ़ेगी।

इस दृष्टि से *महाभारत* का यह प्रसिद्ध वाक्य भी महत्वपूर्ण है—

अहिंसा परमो धर्मः।

यह सूत्र भारतीय नैतिक परंपरा में अहिंसा की सर्वोच्च प्रतिष्ठा को व्यक्त करता है। यद्यपि इसका मूल संदर्भ गांधीवादी राजनीतिक अहिंसा से भिन्न है, फिर भी गांधी ने भारतीय परंपरा के अहिंसा-मूल्य को आधुनिक राजनीतिक संघर्ष के लिए नई व्याख्या प्रदान की।

(iv). सत्याग्रह: भविष्य के लोकतांत्रिक समाज का नैतिक साधन

सत्य और अहिंसा का समन्वित रूप गांधी के सत्याग्रह में दिखाई देता है। सत्याग्रह में बाहरी शक्ति की अपेक्षा **आत्मबल** को प्राथमिकता दी जाती है। इसका उद्देश्य विरोधी को हिंसा द्वारा पराजित करना नहीं, बल्कि सत्य के प्रति आग्रह और आत्मपीड़ा के माध्यम से अन्याय को उजागर करना है।

भगवद्गीता में निष्काम कर्म का सिद्धांत—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥*(भगवद्गीता, 2.47)*

कर्तव्य-केंद्रित जीवन की प्रेरणा देता है। गांधी ने गीता के कर्मयोग की अपनी व्याख्या को सामाजिक सेवा और सत्याग्रह से जोड़ा (Gowda, 2011)। इस संदर्भ में सत्याग्रह को भविष्य के लोकतांत्रिक समाज में नागरिक प्रतिरोध की एक नैतिक पद्धति के रूप में देखा जा सकता है।

जहाँ हिंसक संघर्ष लोकतांत्रिक संस्थाओं को कमजोर कर सकता है, वहीं सत्याग्रह नागरिकों को अन्याय के विरुद्ध **शांतिपूर्ण और नैतिक प्रतिरोध** का विकल्प प्रदान करता है।

(v). सत्य, अहिंसा और कृत्रिम बुद्धिमत्ता का युग

कृत्रिम बुद्धिमत्ता के विकास ने मानव जीवन में अभूतपूर्व संभावनाएँ उत्पन्न की हैं, लेकिन इसके साथ सत्य, निजता, रोजगार, निर्णय-प्रक्रिया और नैतिक उत्तरदायित्व से जुड़े प्रश्न भी सामने आए हैं। कृत्रिम प्रणालियों द्वारा उत्पन्न गलत अथवा भ्रामक सामग्री की संभावना यह प्रश्न उठाती है कि तकनीकी प्रगति के बीच सत्य की पहचान और संरक्षण कैसे किया जाए।

ऐसे संदर्भ में गांधीवादी सत्य-दृष्टि तकनीक के उपयोग के लिए एक नैतिक कसौटी प्रदान कर सकती है। तकनीक का मूल्य केवल उसकी दक्षता से नहीं, बल्कि उसके **मानवीय परिणामों** से भी निर्धारित किया जाना चाहिए। इसी प्रकार अहिंसा की अवधारणा डिजिटल हिंसा, घृणात्मक भाषण, साइबर उत्पीड़न और सामाजिक ध्रुवीकरण के संदर्भ में व्यापक नैतिक अर्थ ग्रहण कर सकती है।

(Vi). भविष्य के लिए समन्वित गांधीवादी मूल्य-दृष्टि

सत्य और अहिंसा को अलग-अलग मूल्यों के रूप में देखने के बजाय गांधीवादी चिंतन में इन्हें परस्पर संबद्ध मानना अधिक उपयुक्त है। सत्य लक्ष्य है और अहिंसा उस लक्ष्य की ओर जाने वाली नैतिक पद्धति। सत्याग्रह इन दोनों का सामाजिक-राजनीतिक समन्वय है।

भविष्य की मानव सभ्यता के संदर्भ में इस त्रिकोण को इस प्रकार समझा जा सकता है—

सत्य → नैतिक दिशा

अहिंसा → नैतिक साधन

सत्याग्रह → सामाजिक एवं राजनीतिक प्रयोग

इस दृष्टि से गांधीवादी विचार आधुनिक मानवता के सामने उपस्थित हिंसा, असत्य, सामाजिक ध्रुवीकरण और नैतिक संकटों के समाधान की दिशा में वैकल्पिक चिंतन प्रस्तुत करता है।

5.सर्वोदय: लोककल्याणकारी भविष्य की परिकल्पना

गांधीवादी चिंतन में **'सर्वोदय'** का आशय केवल सामान्य विकास से नहीं, बल्कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में गरिमा, अवसर और कल्याण की स्थापना से है। इसमें विकास की कसौटी केवल आर्थिक समृद्धि नहीं, बल्कि यह भी है कि समाज का कोई वर्ग वंचित, शोषित अथवा उपेक्षित न रहे। भारतीय दार्शनिक परंपरा में व्यक्त सामूहिक कल्याण की भावना से सर्वोदय का वैचारिक साम्य दिखाई देता है। प्रार्थना-मंत्र—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

सभी के सुख, स्वास्थ्य और कल्याण की कामना को अभिव्यक्त करता है। गांधी ने ऐसी व्यापक कल्याण-दृष्टि को आधुनिक सामाजिक एवं राजनीतिक संदर्भ में **सर्वोदय** की संकल्पना के रूप में विकसित किया। इस प्रकार सर्वोदय को भारतीय लोकमंगल की परंपरा और गांधी के सामाजिक दर्शन के बीच एक महत्वपूर्ण वैचारिक कड़ी के रूप में देखा जा सकता है।

(i). आर्थिक विषमता और न्यासिता

सर्वोदय की अवधारणा आर्थिक जीवन को भी नैतिक उत्तरदायित्व से जोड़ती है। गांधी के अनुसार आर्थिक प्रगति का उद्देश्य केवल संपत्ति का संचय नहीं होना चाहिए, बल्कि समाज की सामूहिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी होना चाहिए। इसी संदर्भ में उन्होंने **न्यासिता (Trusteeship)** का सिद्धांत प्रस्तुत किया। इसके अनुसार संपन्न व्यक्ति अपनी संपत्ति को केवल निजी अधिकार की वस्तु न मानकर समाज के प्रति उत्तरदायित्व के साथ उपयोग करे।

इस विचार का उद्देश्य हिंसक वर्ग-संघर्ष के माध्यम से आर्थिक विषमता समाप्त करना नहीं, बल्कि संपत्ति और संसाधनों के प्रति नैतिक उत्तरदायित्व की भावना विकसित करना था। गांधीवादी न्यासिता इस अर्थ में पूँजी और सामाजिक कल्याण के बीच एक नैतिक संतुलन स्थापित करने का प्रयास करती है। आधुनिक संदर्भ में इसे सामाजिक उत्तरदायित्व, नैतिक निवेश, सामाजिक उद्यमिता और समावेशी विकास जैसे विचारों के साथ संवाद में देखा जा सकता है।

(ii). सर्वोदय और अंत्योदय का संबंध

सर्वोदय की वास्तविक सार्थकता तब सिद्ध होती है जब विकास का लाभ समाज के सबसे कमजोर व्यक्ति तक पहुँचता है। इसी विचार को गांधीवादी चिंतन में **अंत्योदय** की अवधारणा से बल मिलता है। अर्थात् किसी भी सामाजिक अथवा आर्थिक नीति का मूल्यांकन इस आधार पर किया जाना चाहिए कि उसका प्रभाव समाज के अंतिम और वंचित व्यक्ति पर कैसा पड़ता है।

इस दृष्टि से *भगवद्गीता* का लोकसंग्रह संबंधी विचार उल्लेखनीय है—

लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन् कर्तुमर्हसि।*(श्रीमद्भगवद्गीता, 3.20)*

यहाँ 'लोकसंग्रह' व्यापक सामाजिक हित और सामाजिक व्यवस्था के संरक्षण की ओर संकेत करता है। गांधी ने गीता के कर्मयोग और लोकसंग्रह की अपनी व्याख्या को समाज-सेवा और व्यापक लोककल्याण से जोड़ा। इस प्रकार सर्वोदय का लक्ष्य केवल अधिक लोगों का विकास नहीं, बल्कि **विकास की प्रक्रिया को न्यायपूर्ण और समावेशी बनाना** है।

(iii). भविष्य के समाज की सामाजिक संरचना

आज विश्व आर्थिक असमानता, बेरोजगारी, संसाधनों के असमान वितरण, सामाजिक बहिष्कार और अवसरों की विषमता जैसी चुनौतियों का सामना कर रहा है। यदि विकास की प्रक्रिया का लाभ समाज के सभी वर्गों तक समान रूप से नहीं पहुँचता, तो सामाजिक तनाव और असंतोष बढ़ने की संभावना रहती है।

इस संदर्भ में सर्वोदय की अवधारणा विकास के लिए एक मानवीय कसौटी प्रस्तुत करती है। इसका मूल आग्रह यह है कि आर्थिक विकास सामाजिक न्याय से पृथक नहीं हो सकता। भविष्य की समाज-व्यवस्था में शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, संसाधन और सम्मानजनक जीवन के अवसरों तक व्यापक पहुँच सुनिश्चित करना सर्वोदय की भावना के अनुरूप होगा।

(iv). सर्वोदय और वैश्विक मानवतावाद

सर्वोदय की दृष्टि किसी एक जाति, वर्ग, समुदाय या राष्ट्र के कल्याण तक सीमित नहीं है। इसका अंतिम लक्ष्य व्यापक मानवकल्याण है। संस्कृत परंपरा में व्यक्त—

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

की भावना मनुष्य को संकीर्ण स्वार्थ से ऊपर उठकर व्यापक विश्व-समुदाय के प्रति उत्तरदायी बनने की प्रेरणा देती है।

गांधीवादी सर्वोदय की भविष्य-दृष्टि को इसी व्यापक मानवीय चेतना के संदर्भ में समझा जा सकता है। जलवायु परिवर्तन, महामारी, युद्ध, खाद्य-सुरक्षा और आर्थिक असमानता जैसी समकालीन समस्याएँ किसी एक राष्ट्र की सीमाओं तक सीमित नहीं हैं। इनके समाधान के लिए सहयोग, सह-अस्तित्व और साझा उत्तरदायित्व की आवश्यकता है। इसलिए सर्वोदय की अवधारणा भविष्य के वैश्विक समाज में मानवीय सहयोग और साझा कल्याण के नैतिक आधार के रूप में प्रासंगिक हो सकती है।

(v). संस्कृत साहित्य और सर्वोदय की मूल्य-दृष्टि

संस्कृत साहित्य में 'लोकहित', 'लोकसंग्रह', 'सर्वभूतहित' और 'समत्व' जैसी अवधारणाएँ व्यापक सामाजिक कल्याण की दिशा में संकेत करती हैं। इन अवधारणाओं को गांधीवादी सर्वोदय के साथ जोड़ते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि दोनों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि समान नहीं है। फिर भी इनके बीच एक महत्वपूर्ण **मूल्यगत साम्य** दिखाई देता है—व्यक्तिगत स्वार्थ से ऊपर उठकर व्यापक सामाजिक हित की स्थापना।

गांधी ने भारतीय परंपरा के ऐसे मूल्यों को आधुनिक सामाजिक समस्याओं के संदर्भ में पुनर्परिभाषित किया। परिणामतः सर्वोदय केवल एक आदर्शवादी नैतिक अवधारणा न रहकर सामाजिक न्याय, आर्थिक समानता और मानवीय गरिमा से संबंधित कार्यक्रमात्मक दृष्टि में परिवर्तित हुआ।

6.सामाजिक न्याय: समतामूलक समाज की गांधीवादी भविष्य-दृष्टि

महात्मा गांधी के सामाजिक चिंतन का एक महत्वपूर्ण पक्ष सामाजिक समानता, अस्पृश्यता-निवारण और मानवीय गरिमा की स्थापना से संबंधित है। उन्होंने जातिगत भेदभाव और अस्पृश्यता को भारतीय समाज की गंभीर नैतिक एवं सामाजिक समस्या माना तथा इसके विरुद्ध व्यापक जनजागरण का प्रयास किया। गांधी ने अस्पृश्य कहे जाने वाले समुदायों के लिए 'हरिजन' शब्द का प्रयोग किया, यद्यपि समकालीन सामाजिक एवं अकादमिक विमर्श में संबंधित समुदायों के लिए उनकी स्वीकृत पहचान और संदर्भानुकूल शब्दावली का सम्मान करना अधिक उपयुक्त माना जाता है।

गांधी के सामाजिक चिंतन में मनुष्य की प्रतिष्ठा उसके जन्म, जाति अथवा सामाजिक स्थिति से निर्धारित नहीं होती, बल्कि उसकी मानवीय गरिमा सर्वोपरि है। इस दृष्टि का वैचारिक साम्य *भगवद्गीता* के समदृष्टि संबंधी विचार से स्थापित किया जा सकता है—

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥*(श्रीमद्भगवद्गीता, 5.18)*

अर्थात् ज्ञानी व्यक्ति विद्या एवं विनय से संपन्न ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ते तथा तथाकथित निम्न सामाजिक स्थिति वाले व्यक्ति में भी समान आत्मतत्त्व को देखता है। यद्यपि इस श्लोक का मूल दार्शनिक

संदर्भ आधुनिक सामाजिक न्याय की अवधारणा से भिन्न है, फिर भी गांधी के लिए भारतीय आध्यात्मिक परंपरा में निहित समदृष्टि और मानव-मर्यादा के मूल्यों को आधुनिक सामाजिक जीवन में पुनर्व्याख्यायित करने की पर्याप्त संभावनाएँ थीं।

(i). सामाजिक रूढ़ियों के विरुद्ध गांधीवादी दृष्टि

गांधी ने अस्पृश्यता को केवल सामाजिक व्यवहार की त्रुटि न मानकर नैतिक समस्या के रूप में देखा। उनके सामाजिक कार्यक्रमों में मंदिर-प्रवेश, स्वच्छता, शिक्षा, श्रम की प्रतिष्ठा तथा सामाजिक संपर्क जैसे प्रश्न महत्वपूर्ण रहे। उनका उद्देश्य केवल वंचित समुदायों को दया का पात्र बनाना नहीं, बल्कि उन्हें सामाजिक जीवन में सम्मानपूर्ण सहभागिता दिलाना था।

आधुनिक संस्कृत साहित्य में गांधी के व्यक्तित्व और सामाजिक विचारों को अभिव्यक्ति देने वाली रचनाओं ने भी इन प्रश्नों को साहित्यिक विमर्श का विषय बनाया। पण्डिता क्षमाराव की गांधी-केंद्रित रचनाओं तथा आधुनिक संस्कृत काव्य में स्वतंत्रता, सामाजिक समानता और राष्ट्रीय पुनर्जागरण के प्रसंगों का समावेश इस व्यापक परिवर्तन का संकेत देता है। हालांकि किसी विशिष्ट संस्कृत कृति में जातिभेद को 'सनातन धर्म का कलंक' कहे जाने जैसे कथनों को शोध-पत्र में उद्धृत करने से पूर्व उसके प्रमाणित मूल पाठ और संस्करण का उल्लेख आवश्यक है।

इस प्रकार आधुनिक संस्कृत साहित्य में गांधी-प्रभाव को केवल राजनीतिक राष्ट्रवाद तक सीमित न रखकर सामाजिक पुनर्रचना और मानवीय चेतना के संदर्भ में भी देखा जा सकता है।

(ii). सामाजिक समता और मानव-मर्यादा

गांधीवादी सामाजिक न्याय की केंद्रीय भावना यह है कि समाज की प्रगति का मूल्यांकन केवल आर्थिक उपलब्धियों से नहीं किया जा सकता। यदि किसी व्यक्ति या समुदाय को जाति, जन्म, लिंग अथवा सामाजिक स्थिति के कारण सम्मान और अवसरों से वंचित किया जाता है, तो ऐसी प्रगति अधूरी मानी जाएगी।

महाभारत में भी व्यापक मानवीय दृष्टि का एक महत्वपूर्ण सूत्र मिलता है—

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।

अर्थात् जो व्यवहार स्वयं को प्रतिकूल लगे, वैसा व्यवहार दूसरों के साथ नहीं करना चाहिए। यह सूत्र नैतिक सहानुभूति और परस्पर सम्मान की भावना को व्यक्त करता है। गांधीवादी सामाजिक चिंतन में भी दूसरे व्यक्ति की गरिमा को स्वीकार करना सामाजिक नैतिकता का महत्वपूर्ण आधार है।

इस संदर्भ में गांधी का सामाजिक न्याय केवल अधिकारों की औपचारिक समानता तक सीमित नहीं था; वे सामाजिक व्यवहार में सम्मान और सहभागिता को भी आवश्यक मानते थे।

(iii). लैंगिक समानता और महिला सशक्तिकरण

गांधीवादी सामाजिक दृष्टि में महिलाओं की भूमिका केवल परिवार तक सीमित नहीं थी। स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं की व्यापक भागीदारी ने यह प्रमाणित किया कि राजनीतिक और सामाजिक परिवर्तन में उनकी सक्रिय भूमिका संभव और आवश्यक है। सत्याग्रह और अहिंसक आंदोलनों ने महिलाओं को सार्वजनिक जीवन में भागीदारी का अवसर प्रदान किया।

भविष्य के समतामूलक समाज में सामाजिक न्याय का अर्थ पुरुष और महिला दोनों के लिए समान सम्मान, शिक्षा, आर्थिक अवसर, निर्णय-क्षमता और सार्वजनिक सहभागिता सुनिश्चित करना है। इस संदर्भ में गांधी की आत्मनिर्भरता और स्वावलंबन की अवधारणा महिला सशक्तिकरण के साथ संवाद स्थापित कर सकती है।

हालाँकि आधुनिक लैंगिक समानता की अवधारणा गांधी के समय की सामाजिक संरचना से आगे विकसित हो चुकी है, इसलिए गांधी के विचारों को आज के संदर्भ में आलोचनात्मक पुनर्पाठ के साथ ग्रहण करना अधिक उपयुक्त है।

(iv). सामाजिक न्याय और अंत्योदय

गांधीवादी सर्वोदय की वास्तविक कसौटी समाज के अंतिम व्यक्ति का कल्याण है। सामाजिक न्याय तभी सार्थक होगा जब विकास का लाभ उन समुदायों तक भी पहुँचे जो ऐतिहासिक रूप से वंचित रहे हैं।

इस दृष्टि से *भगवद्गीता* का लोकसंग्रह-सिद्धांत महत्वपूर्ण है—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥ *(श्रीमद्भगवद्गीता, 3.21)*

यह श्लोक सामाजिक नेतृत्व और आदर्श आचरण के प्रभाव को रेखांकित करता है। गांधी ने अपने सार्वजनिक जीवन में नेतृत्व को सेवा और उत्तरदायित्व से जोड़ने का प्रयास किया। उनके लिए सामाजिक परिवर्तन केवल कानून बनाने से नहीं, बल्कि व्यक्ति और समाज की नैतिक चेतना में परिवर्तन से भी संभव था।

(v). भविष्य के समाज की समतामूलक परिकल्पना

गांधी-चिंतन की भविष्य-दृष्टि में ऐसा समाज प्रमुख है जिसमें जन्माधारित भेदभाव, अस्पृश्यता, सामाजिक बहिष्कार और अवसरों की असमानता के लिए स्थान न हो। आधुनिक संस्कृत साहित्य में गांधीवादी विचारों की अभिव्यक्ति इसी व्यापक मानवीय आकांक्षा के संदर्भ में महत्वपूर्ण हो जाती है।

आज सामाजिक न्याय के प्रश्न जाति और अस्पृश्यता से आगे बढ़कर शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, डिजिटल पहुँच, लैंगिक समानता, आर्थिक अवसर और राजनीतिक प्रतिनिधित्व तक विस्तृत हो चुके हैं। अतः गांधीवादी सामाजिक न्याय को समकालीन संदर्भ में पुनर्परिभाषित करते हुए यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि **क्या विकास की प्रक्रिया समाज के प्रत्येक व्यक्ति को समान गरिमा और अवसर प्रदान कर रही है?**

भविष्य में किसी राष्ट्र की वास्तविक प्रगति केवल उसकी आर्थिक या तकनीकी शक्ति से निर्धारित नहीं होगी, बल्कि इस बात से भी होगी कि वह अपने कमजोर और वंचित नागरिकों को कितनी समानता, सुरक्षा और सम्मान प्रदान करता है।

(vi). सामाजिक न्याय से मानव-धर्म की ओर

संस्कृत साहित्य में 'धर्म' का अर्थ केवल धार्मिक अनुष्ठान नहीं, बल्कि कर्तव्य, नैतिकता और लोकव्यवस्था से भी जुड़ा रहा है। *मनुस्मृति* में धर्म के सामान्य लक्षणों का उल्लेख करते हुए कहा गया है—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

यहाँ धृति, क्षमा, संयम, शुचिता, विद्या, सत्य और अक्रोध जैसे गुणों को धर्म के लक्षणों में रखा गया है। गांधीवादी पुनर्पाठ में धर्म को

सामाजिक नैतिकता और मानव-कल्याण से जोड़ने की संभावना दिखाई देती है।

इस प्रकार सामाजिक न्याय को केवल राजनीतिक अधिकारों का प्रश्न न मानकर मानव-मर्यादा, करुणा, समानता और उत्तरदायित्व की व्यापक नैतिक अवधारणा के रूप में समझा जा सकता है।

7. पर्यावरणीय चेतना: प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व

गांधी जी का प्रसिद्ध कथन था—"प्रकृति के पास हर इंसान की जरूरत को पूरा करने के लिए पर्याप्त संसाधन हैं, लेकिन किसी के लालच को पूरा करने के लिए नहीं।" आज जब पूरी दुनिया ग्लोबल वार्मिंग और जलवायु परिवर्तन से जूझ रही है, गांधी जी की पर्यावरणीय चेतना सबसे महत्वपूर्ण हो जाती है।

(i)प्रकृति और पुरुष का संबंध: संस्कृत की मूल चेतना प्रकृति-पूजक है (जैसे वेदों में 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः') । आधुनिक संस्कृत साहित्य ने गांधी जी के 'अपरिग्रह' (आवश्यकता से अधिक संचय न करना) के सिद्धांत को भविष्य की पर्यावरणीय चेतना से जोड़ा है।

(ii)आलोचनात्मक विश्लेषण: संस्कृत काव्यों में आधुनिक औद्योगिक अंधी दौड़ की आलोचना की गई है। कवियों ने दिखाया है कि गांधी जी का चरखा और खादी केवल वस्त्र नहीं, बल्कि पर्यावरण-अनुकूल जीवनशैली के प्रतीक थे। भविष्य की पीढ़ी के जीवित रहने के लिए 'उपभोगवाद' को छोड़कर 'गांधीवादी सादगी' को अपनाना ही एकमात्र मार्ग है।

8.आलोचनात्मक मूल्यांकन: संभावनाएँ और सीमाएँ

संस्कृत साहित्य में गांधी-चिंतन की भविष्य-दृष्टि का अध्ययन करते समय हमें इसका आलोचनात्मक मूल्यांकन भी करना होगा:

(i)आदर्शवाद बनाम यथार्थवाद: संस्कृत कवियों ने गांधी जी के विचारों को बहुत ही ऊंचे नैतिक धरातल पर रखा है। आलोचकों का मानना है कि आज के शुद्ध भौतिकवादी और कूटनीतिक युग में 'हृदय परिवर्तन' और 'पूर्ण अहिंसा' जैसे विचार अत्यधिक आदर्शवादी लगते हैं।

(ii)सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का पुट: संस्कृत साहित्य में गांधी को अक्सर एक 'ऋषि' या 'अवतार' के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इससे उनके राजनीतिक और व्यावहारिक पक्ष की तुलना में उनका आध्यात्मिक पक्ष अधिक उजागर हुआ है, जिससे कभी-कभी उनके व्यावहारिक आर्थिक सिद्धांतों (जैसे कुटीर उद्योग) की उपेक्षा हो जाती है।

(iii)सकारात्मक पक्ष: इन सीमाओं के बावजूद, यह साहित्य इस बात का प्रमाण है कि गांधीवादी विचार कालजयी हैं। जब भविष्य में युद्ध, प्रदूषण और सामाजिक बिखराव चरम पर होगा, तब मानव जाति को लौटकर इन्हीं मूल्यों के पास आना होगा।

9.निष्कर्ष

संस्कृत साहित्य में समाहित गांधी-चिंतन की भविष्य-दृष्टि केवल अतीत का स्मरण नहीं है, बल्कि आने वाले कल के संकटों का समाधान पत्र है। सत्य और अहिंसा के माध्यम से वैश्विक शांति, सर्वोदय और सामाजिक न्याय के माध्यम से समतामूलक समाज, तथा अपरिग्रह के माध्यम से पर्यावरण की रक्षा—यही वह पंचामृत है जो भविष्य के मानव को विनाश से बचा सकता है। संस्कृत कवियों ने गांधी जी को एक वैश्विक नागरिक और भविष्य के मार्गदर्शक के रूप में स्थापित करके इस भाषा की प्रासंगिकता को आधुनिक युग में सिद्ध किया है।

10.संदर्भ-सूची

(i) गांधी, एम. के. (1927)। *आत्मकथा: सत्य के साथ मेरे प्रयोगों की कहानी*। नवजीवन प्रकाशन गृह।

(ii) गौड़ा, एन. के. (2011)। अनासक्ति योग और राष्ट्रवादी कल्पना: गीता की गांधीवादी व्याख्या। *द भगवद्गीता इन द नेशनलिस्ट डिस्कोर्स* (पृ. 168– 204) । ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

(iii) हज़ामा, ई. (2022)। गांधीवादी अहिंसा के मिथक का पुनर्विश्लेषण: गांधी ने सत्याग्रह के सिद्धांत को 'हिंदू' अहिंसा की अवधारणा से क्यों जोड़ा? *मॉडर्न इंटेलेक्चुअल हिस्ट्री, 20*(1), 116– 140।

(iv) मंटेना, के. (2012)। एक अन्य यथार्थवाद: गांधीवादी अहिंसा की राजनीति। *अमेरिकन पॉलिटिकल साइंस रिव्यू, 106* (2), 455– 470।

(v) **श्रीमद्भगवद्गीता**, अध्याय 2 एवं 16।

(vi) **मुण्डकोपनिषद्**, 3.1.6।

(vii) **महाभारत**, शान्तिपर्व।